

विकास का दश झेलती कोयलांचल की महिलाएं

सारांश

वाष्प (भाप) इंजन के अभ्युदय के बाद यूरोप की औद्योगिक क्रांति को तीव्र गति में निर्णायक सहयोग करने वाले तथा पिछली तीन शताब्दियों से देश के सभी महानगरों तथा शहरों को चमकने के लिए ऊर्जा (बिजली) देनेवाला कोयले का अंचल रानीगंज कोयलांचल इस समय अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा है। आवारा पूँजी के अंधाधुंध मुनाफा अर्जित करने की मानसिकता ने अवैज्ञानिक खनन को बढ़ावा दिया। इसका परिणाम यह निकला कि इसकी कोख से निकलने वाले काले हीरे (कोयला) ने भले ही विश्व के विकास को गति दी हो, शहरों को चमचमाती रोशनी दी हो, लेकिन इसकी मिट्टी की अंतरात्मा स्वयं ही दहक रही है। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से लेकर इस दौर की निजी व सरकारी कोयला कंपनियों के साथ-साथ कोयला तस्करों ने इस अंचल को इस कदर लूटा है कि एक तरफ इसकी भूमि भूमिगत आग से धक्क रही है, भू-धंसान का शिकार बन रही है तो दूसरी ओर इसकी मूल संतानें अपने अस्तित्व के लिए दर-दर भटक रही हैं। कम समय में अधिक से अधिक कोयले के दोहन की मानसिकता ने बड़ी-बड़ी खदानों का रास्ता खोल दिया है। इस कारण सतह पर और सतह के नीचे हर ओर आग लगी है, कहीं मिथेन गैस के विस्फोट हैं तो कहीं डिटोनेटर व जिलेटिनों का बारूदी गंध फैला है। फलस्वरूप सैकड़ों गांव या तो उजड़ गये, ग्रामीण विस्थापित हो गये या विस्थापन की कगार पर खड़े हैं। इस स्थिति में इस कोयलांचल की आधी आबादी यानी महिलाओं की स्थिति इससे अलग कैसे हो सकती है? आखिर वे भी तो धरती की ही तरह परिवार के केंद्र में होती थी और होती हैं। बेटी, बहन और माँ के रूप में परिवार और समाज के विकास में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। कोयलांचल की जमीन की ही तरह उनका भी शारीरिक दोहन किया गया। विकास के नाम पर उजाड़ी गई हैं, अपनी ही मिट्टी, अपनी ही संस्कृति, अपनी ही पहचान से दूर की गई हैं। विस्थापन के कारण सबसे ज्यादा उत्पीड़ित हुई है और इस दौर में भी अपने अस्तित्व, अपनी पहचान और विकास की खोज में इतनी दूर चली आई हैं कि समस्याओं के दावानल में बाहर और भीतर झुलस रही हैं। विकास और संस्कृति के नाम पर जो महिलाएँ दिख रही हैं, उनकी अपनी कोई अहमियत नहीं रह गई है। वे विकास की सबसे पिछली कतार में खड़ी हैं या विकास की चकाचौंध में विरासत की प्रतीक के रूप में यांत्रिकता के साथ हँसती, मुस्कुराती व नृत्य करती दिख जाती है।



मीना कुमारी

प्राध्यापिका,
हिन्दी विभाग,
टी0डी0बी0 कॉलेज,
रानीगंज, पश्चिम बर्दवान,
पश्चिम बंगाल

मुख्य शब्द : कोयलांचल, राढ़ प्रदेश, पयालिस्ट्रयान।

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास की ही तरह कोयलांचल का विकास हुआ है। खनिजों को अपने गर्भ में छिपाये रखने के कारण इसका स्वरूप मैदानी इलाकों की तरह समतल व सुंदर नहीं है। बड़े-बड़े पहाड़ों के साथ भूरे रंग की पथरीली जमीन का हिस्सा अधिक है। पहाड़ों से निकलनेवाली विभिन्न नदियों के किनारे के करीबी इलाकों को छोड़ दें तो अधिसंख्य क्षेत्रों में खेती नहीं होती थी। जंगलों से पूरा इलाका पटा था। पथरीली जमीन होने के कारण ही इतिहास की पुस्तकों में इसे 'राढ़ प्रदेश' कहा गया है। पुराणों में भी इसका जिक्र है। यहाँ के निवासी मूलतः प्रोटोऑस्ट्रोलॉड मूल के हैं। जो बाद में द्रविड़ मूल के रूप में चर्चित हुए। कोल, भील, मुंडा, सान्तारी, खन्द, शबर, जुयांग, गोंड, उरांव, पुलिंद, लोधा आदि ऑस्ट्राल या ऑस्ट्रिक मूल के हैं। पौराणिक कहानियों में इनका उल्लेख 'निषाद' के रूप में है। मुंडा जाति से बाउरी व बागदी तथा हाडी व डोम जातियाँ विकसित हुई हैं। सांतारी से संथाली, कोड़ा व महाली आदि जातियाँ विकसित हुई हैं।

इस इलाके की सभ्यता काफी पुरानी है। महाभारत की कहानी से जुड़े पांडवेश्वर में शताब्दी से चार हजार पूर्व की पयालिस्ट्रयान सभ्यता के प्रमाण मिलते हैं। अंडाल में लेखन सभ्यता के अवशेष बिखरे पड़े हैं। जैन धर्म से जुड़े विभिन्न ग्रंथों में इस इलाके का विवरण बज्रभूमि के रूप में किया गया है। कहीं-कहीं राढ़ क्षेत्र भी कहा गया है। आर्यों के पुराणों में भी यहाँ के निवासियों का जिक्र कहीं 'निषाद', कहीं 'असुर' तो कहीं 'अनार्य' के रूप में किया गया है।

पूर्व और पश्चिम भारत के बीच होने के कारण इस इलाके से कई महत्वपूर्ण सड़कें गुजरती हैं। इन सड़कों से हिंदू, सुल्तानी, बादशाही युग की सेना, व्यवसायी, पर्यटक, तीर्थयात्री आदि आवागमन करते थे। यहाँ के निवासियों पर जैन धर्म और बाद में बौद्ध धर्म का अधिक प्रभाव दिखता है।

मानव सभ्यता के क्रमिक विकास की मुख्य धारा में भले ही यह इलाका शामिल नहीं रहा हो, लेकिन इसका भी क्रमशः विकास होता रहा। विभिन्न नदियों के किनारे बसे गाँव और बस्तियों में बाउरी, बागदी, मदगोप, गोप, डोम, जोल, कामार, घोपा, स्वर्णकार, संधाल, मुंडा, उरांव, भूर्झ्या, कोडा, उनके सामाजिक पुरोहित व सरदार प्रवृत्ति की जातियाँ निवास करती थीं। वे मूलतः जंगल तथा कृषि पर आधारित थी। कृषि, पशुपालन, शिकार, कुटीर उद्योग तथा व्यवसाय से जुड़ी थी। वे सामाजिक रूप से एक-दूसरे से काफी मजबूती से जुड़ी थी। उनके बीच कोई आडंबर नहीं था। शांतिपूर्ण माहौल में जीने की आदी थी। इनके धर्म के बारे में चर्चित इतिहासकार गंडहोम ने इतिहासकार मैग्रेसिनीज का उल्लेख करते हुए लिखा है—
"But the BauvWis, thvWough semi hindused and calling themselves, Hindu and so called by theirV low casts- Neighbours] avWe not admitted to be Hindu AvWYans."

आदिवासी समुदाय के देवी-देवताओं में 'लिटो बा', 'लिटो ग' तथा 'मारंग बुरुंग' शामिल थे। बाद में विभिन्न धर्मों व विकास के क्रमिक दौर में धर्मराज, शिवठाकुर, मनसा, बाघाठाकुर, अग्नि देवता आदि शामिल हुए। पहले महावीर जैन ने स्वयं इस क्षेत्र में जैन धर्म का व्यापक प्रचार किया। हालांकि शुरुआती दौर में उन्हें व उनके शिष्यों को काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। अपमानित होना पड़ा। लेकिन बाद में परिस्थितियाँ अनुकूल हुईं। इसके बाद बुद्धदेव तथा सम्राट अशोक ने इस इलाके में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। बाद के समय में आर्य तथा हिंदू धर्म का प्रवेश हुआ। इस समय में भी बौद्ध धर्म तथा हिंदी धर्म का प्रभाव अधिक दिखता है। लेकिन दोनों के बीच एक विभाजन रेखा भी साफ-साफ दिखती है।

पाषाण युग से लेकर खेती तक तथा घर से लेकर कुटीर उद्योग-धंधों तक महिलाओं की भूमिका और दायित्व सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहे हैं। स्वाभाविक तौर पर इस राढ़ अंचल में महिलाओं का भी समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। इस इलाके की अधिकांश नदियों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। जैसे तो सभी नदियाँ किसी न किसी पहाड़ से निकलती हैं, लेकिन इस अंचल की

तीन नदियों— दामोदर नदी, अजय नदी तथा बराकर नदी में कमोवेश पूरे वर्ष ही पानी का प्रवाह बना रहता है। जैसे देखा जाये तो इस राढ़ क्षेत्र की चौहद्दी भी यहीं तीन नदियाँ तय करती हैं। दक्षिण में दामोदर नदी, उत्तर में अजय नदी तथा पश्चिम में बराकर नदी। इनमें से प्रथम दो दामोदर नदी तथा अजय नदी का पौराणिक व ऐतिहासिक विवरण विभिन्न पुस्तकों तथा पुराणों में भी मिलता है। शेष बची नुनिया नदी, सिंगारण नदी, तुमुनी नदी, तामला नदी, चालना नदी, गारुई नदी आदि मौसमी हैं। इनमें सिर्फ बरसात में पानी उपलब्ध रहता है। शेष आठ महीनों तक ये सूखी रहती है। फलस्वरूप इस अंचल में खेती मौसमी अधिक होती है। धान की खेती प्रमुख है। इस कारण परिवार में महिलाओं की स्थिति हमेशा से प्रभावशाली रही है। द्रविड़ मूल की होने के कारण इनकी शारीरिक क्षमता भी पुरुषों के समान होती है। उस समय घर के भीतर उनका शासन या आधिपत्य होता था। घर के बाहर भी उपाजर्जन में उनकी भागीदारी होने के कारण उनका सामाजिक प्रभाव अधिक था। वन उत्पादों पर कमोवेश उनका ही आधिपत्य था। पर्व-त्योहारों से लेकर धार्मिक अनुष्ठानों तक उनकी उपस्थिति प्रभावोत्पादक होती थी। बौद्ध धर्म के साथ ही इस समाज में महिलाओं का प्रभाव काफी बढ़ा, खास कर प्रमुख जाति बाउरी में। समाज की रीति-रिवाजों से लेकर आत्मविमुक्ति तक उनकी भागीदारी बढ़ती गई। एक ऐसा भी दौर आया जब महिलाएँ ग्राम देवियों के रूप में स्थापित होती थी। मरणोपरांत उनकी वेदी गाँव के किनारे या किसी जल स्रोत के किनारे स्थापित कर दी जाती थी। इस अंचल में सैकड़ों की संख्या में ऐसी ग्राम देवतियाँ मौजूद थीं। इस दौर में भी इनके अवशेष मौजूद हैं। खास-खास मौकों पर उनकी पूजा की जाती है। द्रविड़ मूल की होने के कारण महिलाओं का फूलों से काफी लगाव था। शारीरिक श्रृंगार से लेकर पूजा तक महिलाएँ इन फूलों का उपयोग सर्वाधिक करती थी। यह परंपरा आज भी है। कई गाँवों में घरों तथा बस्तियों के बीच विभिन्न फूलों के पौधे दिख जाते हैं। लेकिन यूरोप के वाष्प इंजन के अभ्युदय तथा इनके कोयला के उपयोग ने इन महिलाओं के आधिपत्य को न सिर्फ समाप्त किया, बल्कि इन्हें इस कदर उपेक्षित किया कि ये इस दौर में अपनी पहचान व अस्तित्व की लड़ाई में पिछड़ती नजर आने लगी हैं।

जैसे तो विश्व में कोयले के खनन और उसके उपयोग का इतिहास काफी पुराना है। इंग्लैंड और चीन जैसे देशों में इसका घरेलू उपयोग दूसरी तथा तीसरी शताब्दी से ही हो रहा था। भारत में लकड़ी के कोयले (चारकोल) का उपयोग सदियों पूर्व से होता रहा है। लेकिन पत्थर कोयले का उपयोग स्टीम इंजन (वाष्प इंजन) के अभ्युदय और खास कर इसके औद्योगिक उपयोग के बाद शुरू होता है। जैसे तो स्टीम इंजन पर पहली शताब्दी में हेरॉन ऑफ एलेक्सनडरिया ने कार्य शुरू किया था। लेकिन स्टीम इंजन के औद्योगिक उपयोग के रूप में पहली सफलता वर्ष 1768 में इंग्लैंड के थॉमस सेवरी को मिली। इसके बाद से ही स्टीम बनाने के लिए ऊर्जा के रूप में कोयले का उपयोग बढ़ने लगा। औद्योगिक क्रांति की यह लहर ब्रिटेन से शुरू होकर

यूरोपीय देशों और वहाँ से नॉर्थ अमेरिका होते हुए जापान और चीन तक पहुँच गई। भारत में भी कोयले की खोज इसी दौर में शुरू हुई। वर्ष 1774 में छोटानागपुर और पलामू के कमीश्नर रहे मिस्टर स्वेटनियम ग्रेट हिटेली ने इस दिशा में कार्य शुरू किया। ईस्ट इंडिया कंपनी से जुड़े जॉन समर और जीएस हिटेली ने रानीगंज के एथोड़ा के पास कोयले के भंडार को खोज निकाला। इन दोनों अधिकारियों ने इस क्षेत्र के कमीश्नर वारेन होस्टिंगसेर से कोयला खनन की अनुमति माँगी। उस आदेश में यह शर्त शामिल थी कि आगामी 18 वर्षों तक सिर्फ उनकी ही कंपनी इस क्षेत्र में कोयला खनन और बिक्री यानी वाणिज्यिक उत्पादन करेगी। वह रायल्टी के रूप में उत्पादित कोयले के आधार पर राजस्व का भुगतान करेंगी। इस आदेश के बाद इन्होंने वर्ष 1775 में आतुरिया, चिनाकुड़ी तथा दामोलिया कोलियरी से ढाई हजार मन (कोयले की तत्कालीन मात्रा) कोयले का उत्पादन किया। सरकार ने इस कोयले की गुणवत्ता की जाँच की तथा इसे इंग्लैंड के कोयले की तुलना में काफी कम गुणवत्ता (राख की मात्रा अधिक थी) का पाया। इस कोयले को ब्रिटेन ले जाने से इंकार कर दिया गया। इसके बाद कोयले के खनन की प्रक्रिया काफी धीमी हो गई। वर्ष 1814 में काफी नीचे के स्तर से कोयले का खनन कर इसकी जाँच कराई गई। और वह कोयला औद्योगिक उपयोग के लिए सही पाया गया। सरकार से 40 हजार रुपये अग्रिम लेकर कोयला विशेषज्ञ मिस्टर जॉस ने वर्ष 1820 में एगरा में कोयला खदान शुरू किया। इसके बाद तो कोयला खदानों के खुलने तथा बंद होने का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह आज तक जारी है। वर्ष 1823 में वेट्स हिटेली ने चिनाकुड़ी में, वर्ष 1824 में मेसर्स जोसेफ एंड कोरंग ने डालमिया और नारायणकुड़ी में कोयला खनन कार्य शुरू किया। वर्ष 1831 में थिलमोर एंड हामफ्रेर कंपनी ने इस क्षेत्र में कोयला खनन शुरू किया। वर्ष 1840 में इरस्कीन एंड कंपनी ने मंगलपुर व रघुनाथपुर में कोयला खनन शुरू किया। वर्ष 1835 से लेकर 1846 तक के बीच सियारसोल के तत्कालीन जमींदार गोविंद प्रसाद पंडित ने कई खदानें खोलीं। वर्ष 1835 में एलेक्जेंडर एच कंपनी ने अपना व्यवसाय समेटते हुए कोयले के खनन का लीज अधिकार द्वारका नाथ ठाकुर (विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर के पितामह) को बेच दिया। उन्होंने वर्ष 1837 में कोर, टैगोर एंड कंपनी का गठन किया। वर्ष 1843 कोर, टैगोर एंड कंपनी तथा थिलमोर हामफ्रेर कंपनी का विलय कर बंगाल कोल कंपनी का गठन हुआ। इसके बाद 1847 में सीतारामपुर, 1848 में तपसी, 1852 में निंघा, वर्ष 1855 में दामोदर कोल कंपनी ने दामुंडा, शेरगढ़ व जाटूडीह में, इसी वर्ष घरुई में, 1856 में घुसिक में तथा वर्ष 1858 में फतेहपुर में कोलियरियाँ शुरू हुईं। पहले उत्पादित कोयले का परिवहन दामोदर नदी तथा अजय नदी के नावों के माध्यम से होता था। वर्ष 1853 में हावड़ा से पांडुआ तक पहली ट्रेन सेवा शुरू हुई। कोयले के परिवहन को केंद्र कर इसका विस्तार वर्ष 1855 में रानीगंज तक किया गया। 28 मार्च, 1855 को रानीगंज के तत्कालीन स्टेशन मास्टर जे गार्डी ने कोयले से लदी 26 वैगनों की

मालगाड़ी को रानीगंज से हावड़ा के लिए रवाना किया। इसके बाद मालगाड़ी व यात्री ट्रेन, नदियों में मोटर लांच तथा औद्योगिक उपयोग में कोयले की मांग बढ़ती गई और पूरे देश में रानीगंज का यह राढ़ इलाका पहला कोयलांचल बन कर उभरा।

लेकिन कोयले के इस अंधाधुंध दोहन से यहाँ का समाज सीधे-सीधे प्रभावित हुआ। विकास के नाम पर इसके विनाश का क्रम भी शुरू हुआ। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से लेकर मौजूदा शासकों तक सभी की विकास नीति में इस कोयलांचल के गर्भ से कोयले का अंधाधुंध दोहन तो है, लेकिन यहाँ के मूल निवासियों का अस्तित्व, उनकी खुशहाली, उनका विकास कहीं भी उनकी नीतियों के केंद्र में नहीं है।

19वीं शताब्दी में इस इलाके में घनी आबादी नहीं थी। ब्रिटिश शासकों ने शुरूआती दौर में जनगणना की कोई पहल नहीं की। वर्ष 1838 में मिस्टर ऑडम की पहल पर जनगणना हुई तथा तत्कालीन बर्दवान जिले के इस पश्चिमांचल में आबादी का घनत्व प्रति वर्ग मील 602 पाया गया। छोटे-छोटे गांव थे। प्रति गांव की आबादी औसतन 392 पायी गयी। इसके बाद वर्ष 1881 में हुई जनगणना के अनुसार प्रति गांव की आबादी 495.51 तक पहुंची। इस इलाके का शासनतंत्र छोटे राजा या उनके मातहत जमींदारों के पास था। जमींदारों का कोयला खनन से कुछ लेना-देना नहीं होता था। अधिसंख्य कंपनियों का मालिकाना अंग्रेजों के हाथों में होने के कारण भी वे अधिक दिलचस्पी नहीं लेते थे। कोयला कंपनियाँ जमींदारों से खनन की औपचारिक अनुमति लेते थे। लेकिन जमीन और श्रमिकों पर नियंत्रण ब्रिटिश मैनेजिंग एजेंसी के पास होता था। वे जम कर इन श्रमिकों का शोषण करते थे, क्योंकि इनके ही श्रम से कोयले के खनन तथा इनके मुनाफे का ग्राफ बढ़ता था। कोयला कंपनियों के पास कोयला खनन की दो तकनीक थी। पहली पोखरिया खदान, जिसमें वे मिट्टी-पत्थर की परत हटा कर कोयले का खनन करते थे। दूसरी तकनीक यह थी कि पिट (कुआँ) बनाकर कोयले की सतह तक पहुंचते थे तथा सुरंग बनाकर कोयले का खनन करते थे। पिट तकनीक कम खर्चीली थी। लेकिन कोलियरी बंद होने पर इन खदानों को सतह पर से धंसा दिया जाता था। यानी दोनों ही तकनीक से जमीन का ऊपरी सतह बुरी तरह नष्ट होती थी। तत्कालीन बंगाल में ब्रिटिश कंपनियों का जो कुल निवेश था, उसकी पांच फीसदी से भी कम राशि इस कोयला क्षेत्र में लगी हुई थी। यही कारण है कि ब्रिटिश शासकों ने भी काफी समय तक इस उद्योग को गंभीरता से नहीं लिया और न इस पर ध्यान दिया।

निजी कोयला कंपनियों ने इस दूरूह तथा कठिन प्रतिकूल परिस्थितियों में श्रमिकों के उपयोग की दोहरी नीति अपनायी। सबसे पहले यहां खेती से जुड़े ग्रामीणों को इससे जोड़ा गया। पूरे वर्ष में धान की एक फसली खेती की तुलना में यहां पूरे वर्ष कार्य और अधिक राशि मिल रही थी। बड़ी संख्या में ग्रामीण विवशता में ही सही, इस उद्योग से जुड़ने लगे थे। वर्ष 1899 तक इस उद्योग से इस अंचल में 30 हजार से अधिक महिला-पुरुष तथा बच्चे जुड़ चुके थे।

लेकिन ब्रिटिश इंडिया के औद्योगिकीकरण तथा वर्ष 1890 में हुए पहले विश्वयुद्ध के कारण कोयले की मांग काफी बढ़ चुकी थी। विश्वयुद्ध में कोयले का उत्पादन दस गुणा, कोयले की कीमत 20 गुणा, कोयला उद्योग में निवेश 12 गुणा तथा श्रमिकों की संख्या में पांच गुणा वृद्धि हुई।

श्रमिकों की बढ़ती आवश्यकता को देखते हुए कोयला कंपनियों ने बिहार, उत्तर प्रदेश तथा उड़ीसा के पिछड़े इलाकों से नौकरी के नाम ग्रामीणों को इस इलाके में लाना शुरू किया। दुरुह और असुरक्षित कार्य स्थल होने के कारण श्रमिक खदानों से भागे नहीं, इसके लिए उन्हें कोलियरियों के पास ही कब्र बनाकर कब्रियों की तर्ज पर रखा जाता था। उनकी सुरक्षा में सरदार, लठैत तथा सुरक्षाकर्मियों की फौज तैनात रहती थी। धीरे-धीरे इन श्रमिकों की संख्या बढ़ने लगी। इस दोहरी तकनीक का असर इस अंचल पर यह पड़ा कि इस इलाके की बस्तियाँ खदानों के विकास के नाम पर या नयी खदान के नाम पर उजाड़ी जाने लगीं। खदानों के नाम सैकड़ों बस्तियाँ तथा गाँव उजाड़ दिये गये। वे इतिहास के गर्भ में समा गये। इस विस्थापन की सर्वाधिक खामियाजा महिलाओं ने भुगता। दूसरी ओर इस ग्रामीण संस्कृति के ठीक विपरीत की आबादी की बस्तियाँ खदानों के आसपास उगने लगीं। जिनमें महिलाओं की कोई उपस्थिति नहीं थी। श्रम तथा पूँजी के मेल से धरती के गर्भ को खंगालना, उससे खनिज का दोहन करना मुनाफा अर्जित करना तथा उसका एक टुकड़ा श्रमिकों को देना, यही व्यवसाय और मुनाफे का पूरा ग्रामर था, यहीं तकनीक थी।

अध्ययन का उद्देश्य

बस्तियों के उजड़ने के बाद यहां के मूल निवासी पुनर्वास के लिए बिखरने लगे। वैसे स्थलों पर उन्हें जाना पड़ा, जहां कोई बुनियादी सुविधाएँ तक नहीं थी। खदानों के कारण खेत तो छिन ही गये थे, जल स्रोत के मुख्य साधन तालाब भी समाप्त होने लगे थे। नदियाँ तो पहले से ही बरसाती होने के कारण सूखी रहती थी। गहरी कोयला खदानों के कारण इलाके का जल स्तर भी काफी नीचे जाने लगा था। कुएँ सूखने लगे। यहाँ की महिलाएँ राजस्थान की तर्ज पर पानी के लिए दो से तीन किलोमीटर दूर तक जाने लगीं। गाँवों के उजड़ने के कारण खेती में उनकी भागीदारी, घरेलू कुटीर उद्योग-धंधों में उनकी उद्यमिता भी पूरी तरह से समाप्त हो गयी। समाज के बिखरने से उनकी संस्कृति भी बिखरने व लुप्त होने लगी। त्योहारों पर सामूहिक खुशी व उल्लास समाप्त होने लगा। सामाजिक आयोजनों पर पूर्ण विराम लगने लगा। ग्राम देवतियों की पूजा तो दूर, उनका अस्तित्व ही नहीं रहा। अधिसंख्य परिवार पलायन के लिए विवश होने लगे या अन्य इलाकों में स्थित अन्य उद्योगों में असंगठित या दिहाड़ी श्रमिकों के रूप में कार्य करने के लिए विवश हो गये। कुछ परिवारों को यदि ठहराव मिला भी तो अपनी संस्कृति से कटने के कारण विकास की मुख्य धारा में शामिल नहीं हो सके। यदि शामिल होने की कोशिश भी की तो अपनी पिछड़ी सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारण मुख्य धारा में टिक नहीं

पाये। महिलाओं की स्थिति सबसे बदहाल और दयनीय हो गयी। सामाजिक व पारिवारिक प्रभाव प्रायः लुप्त हो गया। परिवार की खुशहाली के लिए वे भी पुरुषों की ही तरह असंगठित क्षेत्र में सिर्फ श्रम का उत्पादन बन कर रह गयीं। महिला होने के कारण मजदूरी भुगतान में भी उनके साथ लैंगिक भेदभाव होता गया और सबसे शर्मनाक स्थिति यह बनी कि उनकी दुर्दशा का लाभ उठा कर कार्यस्थल से लेकर आसपास के परिवेश तक में उनका यौन उत्पीड़न भी काफी बढ़ गया। ग्रामीण संस्कृति के समानान्तर विपरीत मानसिकता व संस्कृति की उभरती बस्तियाँ तथा श्रमिक कॉलोनियों में वे आर्य संस्कृति की दलित महिलाओं की तरह ट्रीट की जाने लगी, जो या तो श्रम की यंत्र होती है या काम पिपासा शांत करने की साध्य। उनकी कोई सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं होती।

कोयला उद्योग के संरक्षण, अवैज्ञानिक कोयला खनन रोकने, श्रमिकों का शोषण समाप्त करने तथा ग्रामीणों के विकास के नाम पर वर्ष 1973 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कोयला उद्योग के राष्ट्रीयकरण की घोषणा की, लेकिन इस निर्णय के बाद मूल निवासियों और खास कर महिलाओं की स्थिति में और बदहाली ही आयी। वर्ष 1990 में प्रभावी उदारीकरण की नीति से बदहाली और गहरी होती गयी है। अधिक से अधिक कोयले का कम से कम समय में खनन करने की नीति के कारण कोयला उद्योग में खुली खदानों को प्राथमिकता मिल रही है। बड़ी-बड़ी मशीनों से उत्पादन हो रहा है। एक-एक परियोजना के लिए दस-दस गाँव उजाड़े जा रहे हैं। मौजूदा केंद्र सरकार ने निजी कोयला कंपनियों को भी वाणिज्यिक उत्पादन की अनुमति दे दी है। ई-ऑक्सन के माध्यम से उन्हें कोयले के बड़े-बड़े ब्लॉक (भंडार) आवंटित किये जा रहे हैं। आनेवाले समय में इन कंपनियों के स्तर से बड़ी-बड़ी खदानें खोली जायेंगी, जिसके कारण विस्थापन और अधिक बढ़ेगा। राष्ट्रीय कोयला कंपनियों में भी स्थानीय महिलाओं की भागीदारी लगातार कम हुई है। निजी कंपनियों के दौर में खदानों में सुरक्षा पर कोई विशेष जोर नहीं होता था। इस कारण काफी दुरुह परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता था। पोखरिया खदानों की संख्या कम थी। पिट खदाने अधिक थी। खदानों में बिजली, पीने के पानी या खुली हवा की व्यवस्था नहीं होती थी। इस कारण खदानों के भीतर कोयले की कटाई पर पुरुषों का ही वर्चस्व था। लेकिन कोयले की कटाई के बाद उन्हें पिट से निकालने, उन्हें डिपो तक ले जाने के लिए विभिन्न वाहनों पर लदाई करने, डिपो में कोयले की छंटाई करने, डिपो से ग्राहकों को डिस्पैच करने के लिए विभिन्न बड़े वाहनों यथा ट्रक तथा रेलवे मालगाड़ी रैक पर कोयले की लदाई करने तथा कोयला डिपो में कोयले को जला कर पोड़ा बनाने के लिए जमा करने में महिलाओं की मजबूत उपस्थिति थी। कोयला खदानों में व्यवहृत होनेवाले विस्फोटकों के लिए कोयले की सीम में ड्रिल कर विस्फोटकों को उसमें डाल दिया जाता था। उन्हें बाहर से जाम करना पड़ता था, ताकि विस्फोट का अधिक से अधिक प्रभाव कोयले की सीम पर पड़े और उनमें अधिक दरार पड़े। बाद में उन्हें सावल या गोईता से काटा जाता था। इन विस्फोटकों को

जाम करने के लिए पीली मिट्टी की गुल्लियाँ बनायी जाती थी। उन्हें सूखा कर उनका उपयोग होता था। कुम्हार की तर्ज पर इन गुल्लियों को बनाने तथा सूखाने के कार्य पर महिलाओं का एकाधिकार था। इसके साथ ही विभिन्न कार्यालयों, अधिकारियों एवं बाबुओं के आवासीय कार्य के लिए उनकी जरूरत पड़ती थी। इन कार्यों में यहां की स्थायी मूल की महिलाएँ ही अधिक कार्य करती थी। बिहार, उत्तर प्रदेश या उड़ीसा से लाये गये श्रमिकों में महिलाओं की संख्या नगण्य होती थी।

कोयला खदानों के राष्ट्रीयकरण तक महिलाओं की संख्या कोयला उद्योग में 30 से 35 फीसदी तक थी। लेकिन समय के साथ इनकी संख्या कम होने लगी। लोडिंग के कार्य में पे-लोडर जैसी बड़ी मशीनों का उपयोग होने लगा। इसी कारण बड़ी संख्या में महिलाओं से उनका कार्य छिनने लगा। कोल इंडिया लिमिटेड प्रबंधन ने ऐसी महिला कामगारों से निजात पाने के लिए फीमेल वोलेंटियर रिटायरमेंट योजना लागू कर दी। इसके तहत महिलाओं को मौका दिया गया कि वे अपनी नौकरी अपने बेटे या दामाद को दे सकती हैं। अधिकारी, यूनियन नेता तथा दलालों की संगठित सक्रियता कारगर होने लगी और बड़ी संख्या में महिलाओं ने अपनी नौकरी अपने बेटों और दामादों को दे दी। इसके लिए उन पर भारी पारिवारिक दबाव भी डाला गया। कुछ समय बाद खदानों में विस्फोटकों के उपयोग में मिट्टी की गुल्लियों का उपयोग बंद हो गया। डिटोनेटर तथा जिलेटिनों की उपयोग होने लगा तथा इस कार्य से भी महिलाओं को हटाना पड़ा। वर्ष 1990 तक आते-आते इसीएल महिला कर्मियों की संख्या घट कर दस हजार से भी कम हो गयी। इनमें बड़ी संख्या में चिकित्सा, कार्यालय एवं आवासीय कार्यों से जुड़ी महिलाएँ शामिल थीं। वह वहीं दौर था जब देश और विश्व में महिला सशक्तिकरण के लिए आंदोलनों का दौर चल रहा था। इसके दबाव में कोल इंडिया प्रबंधन ने युवा महिला कामगारों को ट्रेनिंग देकर मोटर बाइडिंग, विभिन्न मशीनों की ऑपरेटिंग एवं अन्य कार्यों में लगाना शुरू किया। इनके कारण इन पदों पर महिलाओं की नयी नियुक्ति तो नहीं हुई, लेकिन उनकी गिरती संख्या पर रोक अवश्य लग गयी। लेकिन यह अभियान भी शीघ्र ठंडा पड़ गया। जमीन अधिग्रहण के बदले मिलनेवाली नौकरियों में भी महिलाओं का प्रवेश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रतिबंधित होने लगा। इस समय फिर यूनियनों की मांग पर प्रबंधन ने फीमेल वोलेंटियर रिटायरमेंट स्कीम लागू कर दी है। कुछ महीनों में बची-खुची स्थानीय मूल की महिलाएँ इसीएल से बाहर हो जायेंगी। इस समय इसीएल में महिला कर्मियों की संख्या महज तीन हजार रह गयी है। इनमें से अधिसंख्य मेडिकल, कार्यालय एवं आवासीय कार्यों से जुड़ी है।

महिलाओं की एक नयी खेप अधिकारियों के रूप में आयी है। लेकिन इनमें 99 फीसदी महिलाएँ अन्य प्रदेशों से आयी है तथा इनमें स्थानीय मूल की महिलाओं का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है।

कम से कम समय में अधिक से अधिक कोयले का उत्पादन तथा मांग और सप्लाई के गैप को पूरा करने के लिए कोयला कंपनियों पर उत्पादन बढ़ाने का काफी

दबाव सरकार के स्तर से हैं। वर्ष 2020 तक एक हजार मिलियन टन का कोयला उत्पादन सिर्फ सीआइएल को करना है। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए केंद्र सरकार ने हाल में ढाई सौ से अधिक कोयला ब्लॉकों का आवंटन सरकारी तथा निजी कंपनियों को किया है। भूमिगत खदानों के घाटे में चलने के कारण हर कंपनी का जोर नयी खदानों को पोखरिया (तालाब) खदान के रूप में शुरू करने की है। इस कारण आनेवाले समय में सैकड़ों गाँवों का उजड़ना तय है।

केंद्र सरकार के दस्तावेजों के अनुसार इस कोयलांचल में दर्जनों कोयला ब्लॉकों का आवंटन हो चुका है। इनमें सरसोतल्ली (रानीगंज), तारा पूर्व (रानीगंज), तारा पश्चिम (रानीगंज) गंगारामचक (खासता), बड़जोड़ा (खासता), गंगारामचक-भादुलिया (खासता), अर्द्धग्राम (रानीगंज), ट्रांस दामोदर (बड़जोड़ा), बड़जोड़ा नॉर्थ (बड़जोड़ा), खागड़ा जयदेव (वीरभूम), खासता पूर्व, इच्छापुर (रानीगंज), कुल्टी (रानीगंज), जगन्नाथपुर-ए, जगन्नाथपुर-बी, सीतारामपुर (रानीगंज), दामगोड़िया (रानीगंज), बिहारीनाथ (रानीगंज), गौरांडी-ए, बी, सी (रानीगंज), अंडाल इस्ट (रानीगंज), दीवानगंज-हरिनरसिंघा (वीरभूम), डिउचा-पाचमी (वीरभूम), कुनूर (रानीगंज), नाचन (रानीगंज), सुनुरी (रानीगंज), वर्मा (रानीगंज), लालगंज (रानीगंज), कवि तीर्थ (रानीगंज), तथा जीतपुर (रानीगंज) शामिल हैं। इन ब्लॉकों में एक सौ हजार मिलियन टन से भी अधिक कोयले का भंडार है। इनसे आगामी दस से 50 सालों तक कोयले को दोहन किया जा सकेगा। इसके कारण गाँवों का उजड़ना उनकी नियति है।

निजी कंपनियों की अवैज्ञानिक कोयला खनन प्रणाली तथा कोयले के अधिक ज्वलनशील होने के कारण रानीगंज में भूमिगत आग की बड़ी विभीषिका यहां के निवासियों को भोगना पड़ रहा है। इसके कारण अक्सरहाँ भू-धूसान की घटनाएँ होती रहती हैं। कोयला जल कर राख में परिवर्तित हो जाता है तथा नीचे बने गैप को भरने के लिए मिट्टी धंस जाती है। सैकड़ों की जानें जा चुकी हैं तथा अरबों की संपत्ति का नुकसान हुआ है। तत्कालीन सांसद हरधन राय की लोकहित याचिका पर सुनवाई कर सुप्रीम कोर्ट ने इस कोयलांचल के 142 शहरों, गाँवों, बस्तियों तथा कोयला कंपनियों की श्रमिक कॉलोनियों में रह रही 40 हजार की आबादी को गैर कोयला धारक जमीन पर पुनर्वासित करने का आदेश दे रखा है। कोर्ट का प्रावधान है कि पीड़ित परिवार चाहे तो सरकारी स्तर पर बननेवाली कॉलोनी में रहे या फिर मुआवजा राशि लेकर अपनी सुविधा के अनुसार कहीं भी शिफ्ट हो जाये। इन 142 शहरों, बस्तियों तथा गाँवों को हर हालत में शिफ्ट होना ही होगा, क्योंकि व वैज्ञानिक जांच में इन्हें पूरी तरह से असुरक्षित घोषित किया जा चुका है, अन्यथा किसी भी समय धंसान से पूरा का पूरा गाँव जमीन में समा जायेगा तथा सैकड़ों की संख्या में जान चली जायेंगी। यानी सुरक्षा के नाम पर ही सही, इन आबादीवाले क्षेत्र की आबादी को उजड़ना ही होगा। हालांकि इनमें चार गाँवों के निवासियों ने पुनर्वास योजना से स्वयं को अलग कर लिया है। उन्होंने स्पष्ट कर दिया

है कि सारे खतरों के बाद भी वे अपनी माटी-अपनी जमीन किसी भी हालत में छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। रानीगंज जैसे ऐतिहासिक शहर को भी उजड़नेवाले शहरों की सूची में शामिल किया गया है।

सांराश

विकास के नाम पर विस्थापन की समस्या महिलाओं के लिए जीवन की एक ऐसी अंधेरी सुरंग साबित हुई है, जिससे उबरने का कोई रास्ता या दिशा उनके पास नहीं है। देश में विकास की कीमत चुकानेवाले तीन करोड़ विस्थापित लोगों में 50 फीसदी आबादी महिलाओं की है। समृद्धि के पथ पर अग्रसर करने की गर्जना करनेवाले राष्ट्र निर्माताओं ने विकास के नाम पर खुशहाली, संपन्नता और अमीरी का वायदा तो खूब किया, लेकिन विकास ने बदहाली, विपन्नता और गरीबी ही पैदा की है। रोजी और जीने के अधिकार तक महिलाओं के छिन लिए गये हैं। समाज में दोगम दर्जे के नागरिक के बतौर जी रही महिलाओं की पीड़ा गुजरते समय के साथ ही और भी गहरी होती गयी है। उनकी उपेक्षा के कारण ही उनकी पहचान मिटती गयी है। परिणामस्वरूप उनके हिस्से में यदि कुछ आया है, तो वह है विवशता तथा हताशा। खेत जब खदान बने तो हर क्षेत्र में पूंजी का हमला तेज हुआ। संस्कृति, पहचान और सामाजिक संरचना पर गहरा चोट हुआ तथा इनके विघटन का दौर शुरू हो गया। समाज तथा परिवार में हिंसा, अपराध तथा यौन उत्पीड़न की घटनाएं आम होने लगी है। विस्थापन के समय जो महिलाएं विधवा या लाचार होती हैं, उन्हें इसलिए भी मुआवजा नहीं मिलता कि वे सरकार तथा प्रशासन की नजर में इंसान समझी ही नहीं जाती। कोयला कंपनियों तथा स्थानीय प्रशासन का तर्क होता है कि जब उनके नाम से जमीन का मालिकाना ही नहीं है तो मुआवजा किस बात का, उन्हें पास इतनी क्षमता या समझ भी नहीं होती कि वे मुआवजा के लिए विभिन्न सरकारी कार्यालयों का महीनों चक्कर लगा सके। विस्थापन एक ऐसी त्रासदी है, जो महिलाओं के जीवन को अंधेरा बना देती है। वे घरविहीन हो जाती है। जमीन से बेदखल और कानूनी अधिकार से वंचित हो जाती है। इससे महिलाएं न सिर्फ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बल्कि शारीरिक और मानसिक रूप से इस कदर प्रभावित होती है कि लाख कोशिशों के बाद भी वे सामान्य जीवन नहीं जी पाती हैं। धीरे-धीरे एक ऐसी अंधेरी सुरंग में खोती जाती है, जहां आशा की रोशनी की किरण दूर-दूर तक नहीं दिखायी देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बर्दवान इतिहास व संस्कृति: यगेश्वर चौधरी. प्रकाशन- वर्ष 1984।
2. बर्दवान परिचय: अनुकूल चंद्र सेन व श्री नारायण चौधरी. प्रकाशन- वर्ष 1979।
3. बर्दवान जिला इतिहास व लोक संस्कृति : एककड़ी चटर्जी, प्रकाशन- वर्ष 2001 (द्वितीय संस्करण)।
4. पश्चिम बंगाल की संस्कृति: विनय घोष, प्रकाशन- वर्ष 1999।
5. 18वीं शताब्दी का बंगाल तथा बंगाली: डॉ अतुल सुर, प्रकाशन- वर्ष 2002।
6. रानीगंज गौरव: विश्वनाथ बनर्जी, प्रकाशन- वर्ष 2010।
7. आसनसोल इतिवृत: डॉ रामदुलाल आचार्य, प्रकाशन, वर्ष 1984।
8. शिल्पांचल शिल्प साहित्य व संस्कृति: महु चटर्जी, प्रकाशन- वर्ष 2008 (द्वितीय संस्करण)।
9. बांग्लार सामाजिक इतिहास: दुर्गाचंद सान्याल, प्रकाशन-वर्ष 2010 (तृतीय संस्करण)।
10. आसनसोल परिक्रमा: शांतिमय बनर्जी, प्रकाशन- वर्ष 2005 (द्वितीय संस्करण)।